जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष -५८ अंक - ११
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक :१००) रु०
आजीवन -१०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

आश्विन-कार्तिक : सम्वत् २०७२ वि० नवम्बर, २०१५

आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री

जन्म - सन् १९१५ ई० – मृत्यु - ८ जुलाई सन् १९७० ई०

आचार्यः सुजनाग्रणीः बुधवरो विद्यानवद्यद्युतिः
रोचिष्णुः श्रुतिशास्त्रदर्शनजगद्विष्णुर्विचारोज्ज्वलः ।
क्षोणयुत्तुङ्गतराचिरन्तनबृहद्भावावलीनामभूत्
सत्योपासक आर्य्यवर्त्मगरमाकान्तो विपश्चित्कविः ।।

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

विजयादशमी पर्व

आर्य समाज कलकत्ता के सभागार में बृहस्पतिवार २२.१०.२०१५ को प्रातः १० बजे से आर्य समाज कलकत्ता के सभागार में विजय दशमी पर्व मनाया गया। इस अवसर पर यज्ञ के अतिरिक्त एक सभा का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता पूर्व प्रधान श्री श्रीराम आर्य जी ने की। इस अवसर पर वक्ताओं ने विजयादशमी पर्व के आयोजन के महत्व तथा मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम जी द्वारा लंका विजय हेतु प्रयाण एवं उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर जिन वक्ताओं ने अपने विचार प्रस्तुत किये उनमें थे — पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० देवनारायण तिवारी, पं० योगेशराज उपाध्याय, पं० देवव्रत तिवारी, श्री मनीराम आर्य। श्री वीरेश जी आर्य ने इस अवसर पर भजन प्रस्तुत किया।

दुर्गा पूजा पर आर्ष साहित्य द्वारा प्रचार एवं प्याऊ व्यवस्था

आर्य समाज कलकत्ता (युवा-शाखा) द्वारा दुर्गापूजा के अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता के सामने साहित्य प्रचार हेतु स्टाल लगाया गया जिसमें पूजा भ्रमणार्थियों ने अच्छी संख्या में आर्ष साहित्य को क्रय किया। साथ ही साथ प्याऊ की भी व्यवस्था की गयी जिसमें शुद्ध पेय जल का वितरण युवा-शाखा के सदस्यों द्वारा किया गया।

बंगाल में आर्य पुरोहित प्रशिक्षण शिविर

महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रतिपादित आर्य समाज के वेद प्रचार-प्रसार रूपी सुमहान उद्देश्य तथा सन्देश को ग्रामीण बंगाल के घर घर में फैलाने की पावन कामना को लेकर आर्य समाज कलकत्ता, आर्य समाज बड़ाबाजार, आर्य समाज हावड़ा, भवानीपुर स्त्री आर्य समाज, आर्य समाज आसनसोल के आर्य पुरूषों ने ऋषि दयानन्द के अनन्य अनुयायी, वैदिक मिशनरी, विद्वान् पं० ओमप्रकाश विद्यावाचस्पति की याद में एक विशाल पुरोहित प्रशिक्षण शिविर का आयोजन बड़े ही धूम-धाम से कलकत्ता आर्य समाज, १९, विधान सरणी में २७ सितम्बर से ४ अक्टूबर २०१५ तक किया। शिविर में ६५ आर्यसमाजों के १०९ प्रशिक्षार्थी शिक्षा लेते रहे।

स्थानीय विधायिका श्रीमती स्मिता बख्शी ने प्रदीप प्रज्ज्वलित करके शिविर का शुभारम्भ किया। साथ में श्री मनीराम आर्य, श्री सुरेश चन्द जायसवाल, श्री सत्यप्रकाश जायसवाल आदि आर्य पुरूषों ने भाग लिया।

शिविर का समापन बड़े ही रोचक, भाव गम्भीर, परिवेश में रंगारंग कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ। समापन समारोह में ऋषिभक्त सर्वश्री श्रद्धानन्द अग्रवाल, खुशहाल चन्द आर्य, ओमप्रकाश मस्करा, आनन्द देव आर्य, रमेश अग्रवाल अरूण अग्रवाल, चादरतन दम्माणी, दीपक आर्य, सुरेश अग्रवाल, शिवकुमार जायसवाल, रञ्जीत झा, मदन सेठ, अच्छेलाल सेठ, छोटेलाल सेठ, आदि सत्पुरूष शोभा बढ़ाते रहे। शिविर में प्रशिक्षक के रूप में पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० योगेशराज उपाध्याय, पं० वेदप्रकाश शास्त्री, पं० सतीश चन्द्र मण्डल, पं० मधुसूदन शास्त्री, पं० वेदभानु, पं० अपूर्व देवशर्मा, श्री अरविन्द सेठ, पं० काशीनाथ आर्य आदि विद्वानों ने अपने अपने ज्ञान, विद्या तथा अनुभवों से शिविरार्थियों को लाभान्वित करने में उदार योगदान दिया। शिविर की सफलता के लिए विशेषरूप से पं० ओमप्रकाश विद्यावाचस्पति की सुपुत्री विदुषी पण्डिता अर्चना शास्त्री तथा श्री दीपक आर्य एवं श्री सुरेश अग्रवाल का हार्दिक सहयोग रहा।

निवेदक -

पं० वेदप्रकाश शास्त्री

संयोजक

आर्य पुरोहित प्रशिक्षण शिविर

—०—

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ५८ अंक — ११
आश्विन-कार्तिक २०७२ वि०
दयानन्दाब्द १९१
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११६
नवम्बर — २०१५

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

इस अंक की प्रस्तुति

१. इस अंक की प्रस्तुति		३
२. दिव्य जीवन	वेद-वीथिका से	४
३. आचार्य रमाकान्त जी शास्त्री	जन्म शताब्दी पर विशेष	७
४. देवताओं के नाम पर पशु हत्या तथा माँस भक्षण	पं० उम्मेद सिंह विशारद	११
५. राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में आर्य समाज	डॉ० उदयन आर्य	१३
६. आर्य समाज की दार्शनिक दृष्टि	डॉ० भवानीलाल भारतीय	१५
७. चाणक्य-नीति में वर्णित भगवान् राम की महिमा	प्रो० ओमकुमार आर्य	१७
८. विज्ञान का आदि स्रोत परमेश्वर है	हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'	२१
१०. चार पुरूषार्थों की संक्षिप्त व्याख्या	खुशहाल चन्द्र आर्य	२५
११. एक खुली चिट्ठी	ज्ञानेश्वरार्य	२८

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

दूरभाष : २२४१-३४३९ **email : aryasamajkolkata@gmail.com**

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा।

३४

दिव्य जीवन

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।

यजु० २५-२१

शब्दार्थ :-

भद्रम्	=	कल्याणकारी
कर्णेभिः	=	कानों से
श्रृणुयाम	=	सुनें
देवाः	=	देव लोग
पश्येम	=	देखें
अक्षभिः	=	आंखों से
यजत्राः	=	यजनशील, संगतिशील
स्थिरैरंगैः	=	सुदृढ़ अंगों से
तुष्टुवांसः	=	स्तुतिशील
तनूभिः	=	शरीरों से
व्यशेमहि	=	प्राप्त करें
देवहितम्	=	देवों के हितकारी
यत्	=	जो
आयुः	=	आयु को

भावार्थ :-

देवपुरुष बनने की इच्छा रखने वालों को चाहिए कि वे कानों से कल्याण की बातें सुनें, आंखों से कल्याणकारी ही देखें । यजनशील सुदृढ़ शरीर वाले बनकर, स्तुतिशील होकर दिव्य गुणों के लिए हितकारी आयु को प्राप्त करें ।

विचार विन्दु :

१. **राष्ट्र या समाज व्यक्तियों के समुदाय से बनता है ।**
२. **व्यक्तियों का जीवन दिव्य गुणों वाला और यजनशील, संगति-समन्वय-सम्मान-सत्कारमय हो ।**
३. **राष्ट्र के लोग स्वस्थ बलवान हों, शारीरिक मानसिक बौद्धिक उन्नति करें ।**
४. **लोग स्तुतिशील हों, निन्दालु न हों, इससे सामाजिक उन्नति होगी ।**
५. **लोगों की आयु देवहित आयु हो । देव गुणों को प्राप्त करने वाला जीवन हो ।**

व्याख्या

इस मंत्र में राष्ट्र को दिव्य बनाने का उपदेश है । यह भी कह सकते हैं कि इस मंत्र में व्यक्ति को अपना जीवन दिव्य बनाने का उपदेश है । राष्ट्र या समाज व्यक्तियों का समुदाय है । एक-एक व्यक्ति के निर्माण से समाज का निर्माण होता हैं और एक-एक व्यक्ति के निर्माण से ही राष्ट्र का भी निर्माण होता हैं । मंत्र में प्रार्थना यह की गई है कि हम कानों से भद्र अर्थात् कल्याणकारी बातें ही सुनें, आंखों से भद्र ही देखें, हमारा जीवन समन्वय-सामंजस्य से युक्त हो । राष्ट्र के लोगों का जीवन स्वस्थ और बलवान् हो और लोग स्तुतिशील लोगों के गुणों की प्रशंसा करने वाले हों, निन्दालु न बनें ।

मंत्र में प्रथम बात यह है कि हम देव-चरित्र और यजनशील समन्वय-सामंजस्य वाले चरित्र को प्राप्त करें । संसार में देव-भाव और दानव-भाव दोनों ही हैं । देव-भाव में, देव चरित्र में देने और दूसरे को सुखी करने का भाव रहता है । देवता अपनी उन्नति के साथ दूसरों की भी उन्नति का ध्यान रखते हैं, स्वार्थी दानव केवल अपनी ही उन्नति का ध्यान रखते हैं, उन्हें दूसरों की उन्नति से कोई मतलब नहीं। असुर ईर्ष्यालु भी होते हैं ।

बच्चों के लिए देवभाव और असुर-भाव समझाने के लिए एक कहानी भी सुनाई जाती है । एक बार असुरों ने भगवान् से प्रार्थना की कि आप हमेशा देवताओं का पक्ष-पात करते हैं, हम पर भी कृपा करिये । भगवान ने कहा कि तुम्हारा जीवन और चरित्र ही ऐसा है कि तुम हमारी सहायता ले ही नहीं पाते हो । असुरों ने पूछा-कैसे ? भगवान् ने कहा - देवताओं को भी बुला लो । सब देवता और सब असुर इकट्ठे हो जायें, फिर बात करें । भगवान् ने कहा देव-दानव अलग-अलग बैठ जायें । बीच में एक परदा लगा दिया । भगवान् बोले पहले भोजन कर लो फिर पंचायत करें । भोजन आ गया । बीच में परदा होने से न देव दानवों को देख सकते थे और न दानव देवों को देख सकते थे । भगवान् ने देव-दानव सबके हाथों की केहुनी जाम कर दी । हाथ डण्डे बन गये, मुंह तक पहुंचते ही नहीं । भोजन सामने पड़ा है, किन्तु खायें कैसे ? देवता-दानव दोनों चकराये । देवताओं को दान करने का अभ्यास था, सो एक-दूसरे को खिलाने लग गये और भगवान् को बोले, थोड़ा पूरी-खीर कुछ और भोजन मंगवाइये । असुर चिल्लाये कि - भगवान् आज फिर आपने पक्षपात किया । हमारे हाथ जाम कर दिये और देवता खा रहे हैं । भगवान् बोले उठकर देखो स्वयं नहीं खा रहे हैं, दूसरों को खिला रहे हैं । बस जिसे केवल अपना मुंह-पेट दीखता है वह असुर और जिसे अपने मुंह - पेट के साथ दूसरों का भी मुंह-पेट दीखता हैं उनमें देव - भाव भी है और यज्ञ भाव का समन्वय-सामंजस्य भी है ।

मंत्र में कहा गया है कि हम कानों से भद्र ही सुनें और आंखों से भद्र ही देखें । भाव यह हुआ कि हम न दूसरों की बुराई करें और न दूसरों की बुराई देखें, न दूसरों की बुराई सुनें । हमारे जीवन में देव-गुण आवें, दानव गुण न आवें । हम दूसरे के गुणों को, दूसरे के कल्याण को बढ़ा-चढ़ाकर कहने का मन रखें ।

दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं-एक का भ्रमर का स्वभाव होता हैं और कइयों का मक्खियों का स्वभाव होता है -

भ्रमरा मधुमिच्छन्ति, व्रणमिच्छन्ति मक्षिकाः

भौंरे हमेशा फूलों पर बैठते हैं, मधु को ग्रहण करते हैं, वे पीप पर नहीं बैठते । मक्खियां सदा घाव पर, पीप पर बैठती हैं । मक्खियों को दुर्गन्ध पसन्द है ।

एक प्यारी सी सूक्ति है -

परगुण परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्

स्वहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।

अर्थात ऐसे सन्त स्वभाव के लोग बहुत कम हैं जो दूसरों के छोटे से गुण को विशाल पर्वत जैसा महान बनाकर अपने हृदय में रख लेते हैं ।

हम अपने जीवन में हो सके तो दूसरों की प्रशंसा करें और कभी दूसरों की बुराई को न देखें, न अपनावें । हमारा इस संसार में जन्म हो तो उपकार करने के लिए, पाप कमा कर दूसरों को कष्ट पहुंचाने के लिए नहीं । हमें जीवन मिले तो ऐसा जीवन मिले, ऐसी आयु मिले जो देव-गुणों और देव-पुरुषों के लिए हितकारी हो ।

परोपकाराय सताम् विभूतयः

मंत्र में प्रार्थना करते हैं कि हमें लम्बी आयु मिले, किन्तु जीवन में परमार्थ आवे, स्वार्थ न आवे।

शोक-प्रस्ताव

माता सुमित्रा देवी आर्या दिवंगत

प्रिय परिवार की स्नेहमयी माता श्रीमती सुमित्रा देवी आर्या 'सिद्धांत रत्न' (८४ वर्ष), धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री देवप्रिय आर्य, 'सिद्धांत शास्त्री', सोनीपत का निधन दिनांक ३० अगस्त, २०१५ को हुआ । उनका अन्त्येष्टि संस्कार गुड़गाँव में किया गया तथा प्रार्थना सभा ०२ सितम्बर, २०१५ को आर्य समाज सेक्टर १४, सोनीपत में लगभग ४०० लोगों की उपस्थिति में सम्पन्न हुई । आप प्रतिष्ठित समाज सेवी लाला परशुराम आर्य सेवक, झज्जर (हरियाणा), की सुपुत्री व भिवानी (हरियाणा) के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के धनी सर्वमान्य पण्डित फूलचन्द्र शर्मा निडर की पुत्रवधू थीं । आप अत्यंत सरल, स्वाध्यायशील, पूर्ण रूप से वैदिक धर्म को समर्पित आर्य महिला थीं । आप अपने पीछे ६ पुत्र एवं ३ पुत्रियों का विशाल परिवार छोड़ गई हैं जो भारत के कई स्थानों पर वैदिक धर्म की परम्परा को आगे बढ़ा रहा है । मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व ही माता जी का ८५वां जन्मदिन परिवार के सदस्यों ने मिलजुल कर मनाया था। इस अवसर पर प्रिय परिवार की ओर से एक ट्रस्ट 'प्रिय परिवार फाउण्डेशन' की स्थापना की गई। यह ट्रस्ट वैदिक धर्म के प्रचारार्थ कई माध्यमों से काम करेगा । इसी अवसर पर माता जी द्वारा संग्रहीत भजनों की पुस्तिका **मेरे प्रिय गीत** का विमोचन भी माता जी के हाथों किया गया । यह पुस्तिका प्रार्थना सभा के दिन सबी उपस्थित व्यक्तियों को व सम्बन्धित आर्य संस्थाओं में प्रेरणा के रूप में वितरित की गई ।

जन्म शताब्दी पर विशेष

आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री

उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले में सुल्तानपुर शहर से १०-१२ किमी० दूर, पूर्व की ओर झौआरा एक ब्राह्मणों का गाँव है । इस गाँव के सबसे पुराने निवासी उपाध्याय ब्राह्मण हैं । आचार्यजी इसी उपाध्याय परिवार में आश्विन मास की मातृनवमी सम्वत् १९७२ विक्रम को पैदा हुए थे । पिताजी का नाम श्री नागेश्वरजी उपाध्याय और माताजी का नाम श्रीमती दिलराजी देवी था । यह उपाध्याय वंश परम्परानुसारी, शुक्ल यजुर्वेदाध्यायी, माध्यन्दिनिशाखा, दक्षिण शिखा, दक्षिण सूत्र, दक्षिणपाद, त्रिप्रवर इत्यादि परिचयात्मक ऐतिहासिक दृष्टि से विभूषित रहा है । आचार्यजी का कुल कई पीढ़ियों से विद्या के लिए प्रसिद्ध रहा है । आचार्यजी के पिताजी श्री नागेश्वरजी उपाध्याय बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी, कर्मकांडी, नवरात्र का व्रत करने वाले थे । लोग कहते हैं कि उन्हें देवी इष्ट थीं । ज्येष्ठ पितृव्य श्री सीतारामजी उपाध्याय आशुकवि, मर्मज्ञ साहित्यिक, उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रन्थों को बिना पुस्तक देखे ही पढ़ाया करते थे । कनिष्ठ पितृव्य श्री अच्युतानन्दजी उपाध्याय स्वयं व्याकरणाचार्य और आचार्य तक के ग्रन्थों का बड़ी मार्मिकता से अध्यापन करते थे । ऐसे विद्वानों के परिवार में आचार्य जी का जन्म हुआ था । स्वाभाविक था कि संस्कृत अध्ययन की भूमिका बड़ी सुन्दर बनी थी । आचार्य जी प्राईमरी की स्कूली पढ़ाई समाप्त कर सफल पौरोहित्य की दृष्टि से सत्यनारायण की कथा, दुर्गा सप्तशती, मुहूर्त चिन्तामणि आदि ग्रन्थ घर पर ही पढ़ने लगे । फिर कमलाकर (लोहरा मऊ) संस्कृत पाठशाला में कौमुदी आदि व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। कमलाकर, दियरा, मदनचन्द, सुल्तानपुर आदि संस्कृत पाठशालाओं में पढ़ते हुए व्याकरण शास्त्री की परीक्षा पास की । सन् १९३३ में कलकत्ता आये और १९४० ई० में श्री विशुद्धानन्द संस्कृत पाठशाला से व्याकरणातीर्थ परीक्षा पास की ।

आचार्य जी कुशाग्र बुद्धि एवं मेधावी थे । धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे । २० वर्ष की अल्पायु में श्रीमद् भागवत की कथा बड़े गौरव के साथ की थी । उन दिनों आचार्य जी बड़ी निष्ठा से पौराणिक कर्मकांड किया करते थे । मलमास में गाँव से २-३ मील दूर निर्जन जंगली घाट पर गोमती में स्नान करना, वहाँ से फिर २ मील पैदल चलकर सूर्योदय से पूर्व ही झारखण्ड महादेव पर जल चढ़ाना और फिर घर आकर सूर्योदय के आसपास पूजा पर बैठ जाना, शिवताण्डव स्तोत्रादि कई सारे स्तोत्रों का पाठ करते थे । सन् १९३३ ई० में कलकत्ता आने पर उनका परिचय कुछ रामायण गाने वाले, डलहौजी स्कवायर के आसपास बैंकों में काम करने वाले लोगों से हुआ । इसी समय १९३५ ई० में कलकत्ता आर्यसमाज का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव बड़ी सजधज से कलकत्ता के गिरीश पार्क में मनाया गया । इस महोत्सव में कुँवर सुखलालजी भजनोपदेशक आये थे और उपदेशकों

में बनारस के प्रसिद्ध विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी पं० विद्यानन्दजी भी एक थे । आचार्य रमाकान्तजी को संगीत से बड़ा प्रेम था और स्वयं भी बहुत अच्छा गाते थे । आर्यसमाजी साथियों ने कुँवर सुखलालजी के गीत सुनने के लिए इन्हें राजी कर लिया था । गीत-आकर्षण इतना था कि प्रथम पंक्ति में ही जाकर बैठे थे । सुखलालजी के गीत से ये मुग्ध हो गये और इसके पश्चात् पं० विद्यानन्दजी का मूर्तिपूजा पर व्याख्यान हुआ । आचार्य जी मूर्तिपूजा का खण्डन सुनना पाप समझते थे, किन्तु भीड़ इतनी अधिक थी कि वहाँ से निकल ही नहीं सकते थे । उधर पं० विद्यानन्द जी विद्यया वपुषा वाण्या वस्त्रेण वैभव आकृष्ट करने लगा । अस्तु, मूर्तिपूजा पर व्याख्यान सुना तो मूर्तिपूजा की निःसारता जमती गयी । रात को लौटकर उसी समय सत्यार्थ प्रकाश की पुस्तक साथियों से ली और १-२ बजे रात तक उसे पढ़ते रहे । बस, आर्यसमाज के भक्त बन गये, जैसे बोध हो गया । उस समय प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति कलकत्ता आये हुए थे। आचार्य जी का अध्ययन, सिद्धान्तों पर शंका-समाधान, पं० सुखदेवजी और पं० अयोध्या प्रसादजी जैसे प्रसिद्ध विद्वानों से होता रहा और वैदिक सिद्धान्तों की जड़ दृढ़ता पकड़ती गयी । इन्हीं दिनों पं० अयोध्या प्रसादजी का वार्त्तालाप काशी के प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री से अद्वैतवाद पर हुआ । पं० अयोध्या प्रसाद जी ने महामहोपाध्यायजी को सर्वथा असमर्थ कर दिया था । इसी समय एक और शास्त्रार्थ पं० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति ने प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् श्री माधवाचार्य जी से किया था । आचार्य जी ने बड़ी सुस्पष्टता से अनुभव कर लिया था कि लाख लीपापोती करने पर भी पौराणिक विद्वान् बुरी तरह पराजित हो गये थे । इन सब प्रसंगों ने उन्हें परम भक्त निष्ठावान् आर्यसमाजी पुरोहित बना दिया । अब वे आर्य समाज के प्रचार में सर्वात्मना जुट गये । प्रति सप्ताह तीन-चार व्याख्यान, एक-दो विवाद-सभाओं का आयोजन करते रहे। उनके शिष्यों की संख्या एक ओर जहाँ अध्यापक-विद्यार्थी-बुद्धिजीवियों में बढ़ती रही, वहाँ दूसरी ओर व्यवसायीवर्ग के लोग भी आपके गुणमुग्ध शिष्य बनते गये ।

आचार्य जी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे ही, बड़े दंगली शास्त्रार्थी भी थे । शास्त्रार्थ के समय उनकी सूझबूझ बड़ी विचित्र होती थी । उनके शास्त्रार्थों के छिटपुट प्रसंग उनके संस्मरणों में मिलते हैं । कुछ उनकी शास्त्रार्थ चातुरी की बानगी उदाहरणरूप प्रस्तुत है –

(१) एक शास्त्रार्थ होने वाला था । शास्त्रार्थ की भाषा संस्कृत निश्चित की गयी थी । आचार्यजी की ओर से बोलने वाले विद्वान् ने बोलना आरम्भ किया – तत्र भवन्तः श्रीमन्तः श्रूयन्ताम् । विरोधी पंडितों ने इसमें कर्तृवाच्य का कर्त्ता और कर्मवाच्य की क्रिया सुनकर व्याकरण दोष का आरोप लगाया। आचार्य जी बोल उठे – **नाऽत्र त्रुटिः, तत्र भवन्तः श्रीमन्तः इति सम्बुद्ध पदम्, श्रूयन्ताम् भविष्यन्तः श्रीमद्भिः**–समाधान सुन्दर था, शुद्ध था, विरोधियों ने लोहा मान लिया ।

(२) कलकत्ता में आर्यसमाज के षष्ठ महासम्मेलन पर श्री चपलाकान्तजी भट्टाचार्य ने अपने

निवास स्थान पर एक पंडित सभा की । इस पंडित सभा में पौराणिक और आर्यसमाजी दोनों प्रकार के मूर्धन्य विद्वान् एकत्र हुए । पौराणिकों में महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य इत्यादि उच्चकोटि के १०-१२ विद्वान् थे । आर्यसमाज की ओर से पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं० ईश्वरचन्द्रजी दर्शनाचार्य, आचार्य रमाकान्त जी शास्त्री और पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री उपस्थित थे । कई तरह के प्रसंग उठे । परमात्मा की साकारता पर एक पौराणिक विद्वान् ने 'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः' मन्त्र उपस्थित किया । आचार्य रमाकान्त जी ने उन पौराणिक पंडितजी को वहीं धर पकड़ा । आचार्य रमाकान्त जी ने कहा कि आपका अर्थ तो आपके आचार्यों के भी विरुद्ध है । महीधराचार्य यहाँ सहस्र को संख्यावाची नहीं, बहुत्ववाची मानते हैं । इस पर आचार्यजी ने महीधराचार्यजी के भाष्य की पंक्तियाँ कंठस्थ ही उद्धृत कर दीं । महीधर का यजुर्वेद भाष्य निकाला गया और हू-ब-हू वैसा का वैसा ही पाठ वहाँ निकला । पौराणिक पंडित आर्यसमाजी पंडितों की इस शास्त्रार्थ प्रस्तुति पर दंग रह गये ।

(३) बंगाल में रामपुरहाट एक प्रसिद्ध जगह है । वहाँ वर्णव्यवस्था पर शास्त्रार्थ होना था । आर्यसमाज की ओर से प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री और आचार्य रमाकान्तजी शास्त्री गये हुए थे । शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ । पौराणिक पण्डित ने जन्मना वर्णव्यवस्था की स्थापना की और कुछ धींगा-धींगी जैसी बात आरम्भ होने को हुई । इस परिस्थिति में आचार्य रमाकान्त जी मंच पर खड़े हो गये । सिंहगर्जन करते हुए सीधा संस्कृत में ही बोले—को ब्राह्मणः ? इत्याशंकायाम्, ब्राह्मणोत्पन्नः ब्राह्मणः इति साध्यसमः। उनका तेजस्वी शरीर, गम्भीर धनगर्जन और शुद्ध-परिष्कृत संस्कृत भाषा सुनकर धींगा-धींगी तो यों ही बन्द हो गयी, पौराणिक पण्डित सटपटा गया । आया था स्मृतियों-पुराणों के प्रमाण देने, फँस गया न्याय के साध्यसिद्ध में । पण्डित दीनबन्धुजी इस शास्त्रार्थ को सुनाते और पौराणिकों के चक्कर खाने पर खूब हँसते थे ।

(४) नोआखाली का बर्बर अमानुषिक काण्ड हो चुका था । कितने पूर्वी बंगाल के उच्चवंशस्त ब्राह्मण विद्वान् बलात् मुसलमान बना लिये गये थे । किसी के मुँह में मुसलमान ने थूक दिया, किसीके मुँह में गोमांस ठूँस दिया, इसी प्रकार अनेकानेक उपायों से लोगों को भ्रष्ट किया गया था । इन सब लोगों को पुनः हिन्दू बना लिया जाय, यह व्यवस्था देने के लिए कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज में एक पंडित-सभा हुई । महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य उस सभा के अध्यक्ष थे । सभी पण्डितों ने एक स्वर से स्वीकार किया कि इन सबको फिर से हिन्दू बना लिया जाय । इस प्रसंग पर आचार्य रमाकान्तजी ने एक वैधानिक प्रश्न पूछा कि हिन्दू बनाकर इन विद्वान् व्यक्तियों को किस वर्ण में सम्मिलित किया जायेगा ? एक अच्छे पौराणिक ने कहा कि आपद्धर्म है, उन्हें हम हिन्दू तो बना लें किन्तु रहेंगे शूद्र ही, ब्राह्मण नहीं हो सकते । इस पर आचार्य जी ने बोलना चाहा और कालीपद तर्काचार्य ने बड़े आदर से आचार्य जी का आर्यसमाजी परिचय देते हुए बोलने की स्वीकृति दी ।

आचार्य रमाकान्त जी ने खड़े होते ही 'विजयताम् महर्षि दयानन्द' यहीं से शुरू किया और इन तथाकथित भ्रष्ट विद्वानों को ब्राह्मण वर्ण में ही लेने का अनुरोध किया । सबके सामने महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य ने व्यवस्था देते हुए कहा—बहुप्रीतिकरम् भाषणम् भवताम् ।

शास्त्रार्थ की एक और बानगी देखने लायक है । एक पौराणिक पंडित ने पूछा—एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म, मानते हैं या नहीं ? आचार्य जी बोले—अवश्य मानते हैं । पंडित ने कहा—फिर अद्वैतवाद को क्यों नहीं मानते ? आचार्य जी का उत्तर था—इस वाक्य से अद्वैतवाद सिद्ध नहीं होता । पंडित चकरा गया, कैसे, उसको कुछ समझ में न आया । जब उसने और भी जिज्ञासा की तो आचार्य जी ने पूछा कि एकमेवा-द्वितीयो अध्यापकः देवदत्तः का क्या अर्थ होता है ? पंडित ने सरल भाव से कह दिया—देवदत्त अद्वितीय अध्यापक है । आचार्य जी ने पूछा—इस वाक्य में विद्यार्थी और पाठशाला का भी निषेध है क्या ? जब उसने स्वीकार कर लिया कि इसमें विद्यार्थी और पाठशाला का निषेध नहीं है तो आचार्य जी ने कहा कि इस उपर्युक्त वाक्य में जीव और प्रकृति का निषेध कैसे हो गया ?

आचार्य रमाकान्त जी आर्यसमाज कलकत्ता और आर्यसमाज बड़ाबाजार के आचार्य थे । इन दोनों आर्यसमाजों की सभी प्रचारात्मक गतिविधियाँ आचार्य जी के निर्देश से हुआ करती थीं । दोनों आर्यसमाजों के सत्संगों में आचार्य जी का उपदेश हुआ करता था । आचार्य जी बड़े सफल मिशनरी थे । जो भी उनके सम्पर्क में आता था, उस पर आर्य समाज का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। आचार्य जी प्रति सप्ताह नियमित रूप से विवाद सभाओं का आयोजन कराया करते थे । इसके माध्यम से एक ओर तो नवयुवकों और अधिकारियों को बोलने, व्याख्यान देने का अभ्यास होता था और दूसरी ओर सिद्धान्त प्रतिपादन का अवसर मिल जाता था । अपने अध्यक्षीय भाषणों में आचार्य जी सैद्धान्तिक विषयों की अच्छी समालोचना किया करते थे । आर्य समाज बड़ाबाजार ने अपने वार्षिकोत्सव पर १९६९ ई० में आचार्य रमाकान्त जी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया था और अभिनन्दन पत्र भेंट किया था ।

आचार्य जी उपदेशक थे, आचार्य थे, शास्त्रार्थी थे और कवि भी थे । उन्होंने 'श्रीदयानन्दचरित-महाकाव्यम्' नाम का २० सर्गो का एक महाकाव्य लिखा है, जिसके कुछ सर्ग कभी 'आर्य संसार' में छप चुके हैं । इस महाकाव्य में जहाँ स्वामी दयानन्द जी का जीवन है वहीं वैदिक सिद्धान्तों का बड़ा सरल वर्णन है । इस ग्रन्थ पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध कार्य भी हो रहा है और यह भी ऋषि दयानन्द के जीवन और आर्य सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार का सशक्त माध्यम बन रहा है ।

आचार्य जी का यशस्वी जीवन बड़ी जल्दी शेष हो गया । वे ८ जुलाई सन् १९७० ई० को अपने गौरवमय चरित्र का अवसान करके दिवंगत हो गये । उनके भक्तों और शिष्यों की मण्डली आज भी उनके अभाव को याद करती हैं ।

''इन्हीं अंधेरों में भटक गये होते कितने, चराग बनके कोई जो जला न होता''

देवताओं के नाम पर पशु हत्या तथा माँस भक्षण

– पं० उम्मेद सिंह विशारद

मान्यवर पाठकों ! निकट दशहरा व दीपावली त्योहार आ रहे हैं । दशहरे, बकरीद व काली मन्दिरों की पूजा में लाखों-लाखों निरीह पशुओं की हत्या की जाती है और इसको धर्म का नाम दिया जाता है । विवेकशील मनुष्य भी चुपचाप इस पाप के कृत्य को देखता रहता है । निरपराध पशुओं की हत्या से वातावरण अत्यन्त दूषित हो जाता है और मनुष्यों के चित्त पर गहरा प्रभाव डालकर संस्कारों में हिंसक प्रवृत्ति वाला बना देते हैं और सामान्य जीवन में थोड़ी-थोड़ी बातों में मनुष्यों की हत्यायें आये दिन देखने को मिलती है । ईश्वर की व्यवस्थानुसार पशुबलि, हत्या व जीभ के स्वाद के लिए माँस खाना महापाप है ।

दूषित विकृतियाँ :- अज्ञान के कारण देवताओं के नाम पर पशुओं की हत्या तथा माँस खाने के लिए पशु हत्या दोनों ही गलत हैं । देवताओं के आगे पशु-हत्या करके उन देवताओं की महिमा तो समाप्त होती ही है अपितु वह उल्टा श्राप देते होंगे । सभ्य समाज क्रूर हत्याओं को निन्दित समझता है । जिसका मनुष्य निर्माण नहीं कर सकता है उसकी हत्या करने का क्या अधिकार है । इन हत्याओं के कारण विश्व का वातावरण अत्यन्त दूषित हो गया है । आज की मानवता शर्मशार होकर तार-तार हो रही हैं ।

मन्दिरों में बूचड़ खाने वाला दृश्य :- देवता किसी का अहित नहीं चाहते अपितु उपकार ही करने वाले होते हैं । किन्तु अज्ञान के कारण व ईश्वरीय आज्ञा वेदों की शिक्षाओं से रहित होने के कारण मन्दिरों में भैंसा, बकरा, मुर्गा काटकर बूचड़ खाने का दृश्य उपस्थित हो जाता है और सामान्य लोगों के संस्कार हिंसक बनते चले जाते हैं ।

अज्ञान व अन्धविश्वास की चरम सीमा :- हृदय कांप जाता है जब निरीह बेजुबान पशुओं की देवताओं के नाम पर हत्या की जाती है । शास्त्रों में आठ पापी बताये जाते हैं, मारने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला, सम्मति देने वाला खाने वाला, मूक देखने वाला । किसी भी आर्ष शास्त्रों में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जीव हत्या नहीं लिखी है ।

भारतीय धर्म वेद प्रधान धर्म हैं :- भारत का धर्म, दया, प्रेम, मानवता और प्राणी मात्र के लिए स्नेह सिखाने वाला है और वेदों की शिक्षाओं पर आधारित है । वेदों में कहीं पर भी देवताओं को खुश करने के लिए पशुओं की तथा मनुष्यों की हत्या करने का विधान नहीं है ।

विश्व के धर्म गुरू मूक बनकर तमाशा देख रहे हैं :- विश्व के अधिकांश धर्म गुरू इन निरपराध हत्याओं को गलत समझते हैं और किन्तु इसका विरोध खुलकर नहीं करते हैं । क्या धर्म गुरूओं का

कर्त्तव्य नहीं है इन अन्धविश्वासों को खत्म करने में एकजुट होकर आवाज उठायें ।

देवी-देवताओं के नाम पर पशु हत्या से नरक मिलता है :- देव यज्ञ, पितृ श्राद्ध तथा अन्य कल्याणकारी कार्यो के लिए जो व्यक्ति हिंसा करता है वह नरक में जाता है उसका यह जन्म व आने वाला जन्म दु:खमय हो जाता है और पशु के शरीर पर जितने रोम होते हैं उतने वर्ष तक असिपत्र नामक नरक में रहता है और सारा परिवार भी दण्ड भुगतना हैं ।

जीव हत्या का कुपरिणाम :- स्वार्थी व धर्मविहीन लोगों ने साधारण लोगों को धर्म के नाम से भ्रमित करके अन्धविश्वास फैलाकर पशु हत्या करने का रिवाज बनाया हुआ है । इससे देवता प्रसन्न होना तो दूर की बात, अपितु कुपित होकर उल्टा श्राप देते हैं ।

पशु हमारे जीवन का आधार हैं इन पर अत्याचार न करो :- बिना पशुओं के मानव जीवन अधूरा है ये हमारा बड़ा उपकार करते हैं, दूध, खेती, सवारी, ऊन व अन्य कारणों से हमारा उपकार करते हैं ।

पशु बलि से पूजा अपवित्र होती है :- देवी-देवताओं जो पशु वध करके उन्हें खुश करने का कार्य करते हैं वह अति भ्रम में हैं । अपितु वह जिसको पूजा मानकर कार्य करते हैं वह अपवित्र हो जाती है । पूजा का अर्थ सत्कार है और सत्कार सत्य का ही हो सकता है ।

भारत को (आर्यव्रत) ही रहने दो राक्षस भूमि न बनाओ :- भारत अनादि काल से ही वेदों की शिक्षा संस्कृति व संस्कार व वैदिक धर्म को फैलाने वाला विश्व गुरू रहा है । अवैदिक मान्यताओं से समाज में तमाम बुराईयों फैली हैं । यह नितान्त सत्य है कि पशुओं की हत्याओं से समाज में कभी भी सुख-शान्ति नहीं आ सकती है । पशुओं की हत्या से मानव के संस्कारों में हिंसक प्रवृत्ति बनती है । जिसका वर्तमान वातावरण प्रत्यक्ष प्रमाण है । आज की बढ़ती जनसंख्या और भेड़ चाल से मनुष्य विवेकहीन होता जा रहा है । आज अन्धविश्वास चरम सीमा पर है । यदि संसार के तमाम धर्म गुरू इस समस्या को खत्म करने में एकजुट हो जायें तो मानवता का सुधार हो जायेगा । सम्पूर्ण भारतवर्ष भी यदि पशु हत्या रोकने में सफल हो जाए तो पुनः भारत विश्व धर्म गुरू बन सकता है ।

आर्य समाज संगठन पिछले पौने दो सौ सालों से इस अन्धविश्वास को रोकने का कार्य कर रहा है और उत्तराखण्ड में सफल हो रहा है । उत्तराखण्ड के कई मन्दिरों में पशु बलि बन्द हो गई है ।

वैदिक प्रचारक
गढ़ निवास मोहकमपुर (देहरादून)
मो० : ९४११५१२०१९

—०—

राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में आर्य समाज

(नवनियुक्त राज्यपाल आचार्य डॉ॰ देवव्रत जी के सन्दर्भ में)

मैं ८ अगस्त को रात्रि के ९ बजे चण्डीगढ़ की सुन्दर गलियों में घूम रहा था कि अकस्मात् मुझे मेरे दोस्त सुरेन्द्र का फोन आया कि राज्यपाल के रूप में डॉ॰ देवव्रत जी की नियुक्ति हो रही है इस प्रकार की चर्चा है, आप पता करो कि सच्चाई क्या है ? मैंने यह सुनकर मन ही मन ये भाव व्यक्त किया कि ये सही सूचना हो उसी समय मैंने तुरन्त डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार जी को फोन किया तो उन्होंने फोन उठाते ही मुझे बधाई दी और कहा कि डॉ० देवव्रत जी राज्यपाल रूप में नियुक्त हुए हैं । डॉ० राजेन्द्र जी बहुत व्यस्त थे इसलिए और अधिक बातचीत नहीं हुई । मैंने उस समय बहुत बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की और लगभग ५० आर्य समाज के लोगों को तत्क्षण सूचना दी । क्योंकि खुशी को प्रकट करने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका यही है कि उसकी खुशी, उसकी सूचना अपनों को दी जाए और लगभग उन सब आर्य समाज के लोगों को भी डॉ॰ देवव्रत जी के राज्यपाल रूप में बहुत अधिक खुशी हो रही थी । क्योंकि इस बात को हम और आप लोग जानते हैं कि इतने बड़े पद पर किसी कट्टर आर्य समाजी व्यक्ति को अवसर लम्बे समय के बाद मिला है यह पल हमारे लिए गौरव का पल है क्योंकि जो बीजेपी बिना संघ के अपनी पूँछ भी नहीं हिलाती थी उसी पार्टी में आर्य समाज के व्यक्ति को पद मिलना वास्तव में बड़ी बात है ।

जब से इस देश के प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी बने हैं तबसे संघ के नेतृत्व में कमी आयी है। यदि विगत मोदी के कार्यकाल को देखा जाए तो शायद कट्टर संघ की विचारधारा वाले व्यक्तियों की संख्या कम है । उसका तो एक ही मतलब है कि कहीं न कहीं मोदी संघ से परेशान हैं । आर्य समाज और संघ में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है परन्तु ये संघ वाले अपने आपको दयानन्द से विशेष दूर रखते हैं। आर्य समाज के मंच से तो विवेकानन्द का नाम तो सुनने को मिलता है और मिलना भी चाहिए क्योंकि तत्कालीन समय में विवेकानन्द ने भी विदेशों में जाकर भारत की ध्वजा लहराई है परन्तु हमारा दयानन्द तो विवेकानन्द से बढ़कर है । जिस आर्य समाज और दयानन्द के बिना शिक्षा और स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास नहीं लिखा जा सकता उस संस्था का संघ द्वारा नकारना कहा तक उचित है ! अस्तु । मेरा तात्पर्य डॉ देवव्रत जी को राज्यपाल बनाने के विचार से हैं । मैं वापस १० तारीख को गुरुकुल आया और आते ही विशेष पत्रकार वार्ता का आयोजन किया, प्रधानमन्त्री मोदी को धन्यवाद पत्र लिखा, सोशल मीडिया द्वारा भी विशेष प्रचार-प्रसार किया गया । न केवल मैंने किया अपितु अन्य आर्य समाजों को भी पत्रकार वार्ता करने का बड़े-बड़े बैनर लगाने का, धन्यवाद पत्र लिखने का भी निर्देश व

निवेदन किया । क्योंकि अगर इस समय का आर्य समाज लाभ नहीं उठा पाया तो हमें केवल निराशा ही हाथ लगेगी । क्योंकि इस प्रकार के कार्य करने से उस व्यक्ति के समर्थन में कितने लोग है और उस समुदाय की कितनी संख्या है इत्यादि विषयों की जानकारी सरकार तक पहुँचती है जिससे उस समाज को लाभ मिलता है । जितनी जिस व्यक्ति के समर्थन में प्रतिक्रिया होगी उतना ही सरकार से लाभ मिलेगा । क्योंकि बात सारी वोटों (संख्या) की है परन्तु बड़े दुखी मन से कहना पड़ रहा है कि डॉ० देवव्रत समर्थन में प्रतिक्रिया बहुत कम रही। खुश सब लोग है परन्तु उसके ऊपर थोड़ा-सा परिश्रम करने को हम तैयार नहीं हैं । मैंने पानीपत, चण्डीगढ़, पंजाब के लगभग सभी राज्यों का दौरा किया । परन्तु प्रतिक्रिया शून्य मिली। हाँ, कुछ हद तक सोशल मीडिया पर जरूर लोगों ने प्रतिक्रिया दी । परन्तु ये पर्याप्त नहीं है । आचार्य देवव्रत जी से किसी के व्यक्तिगत, मनोभेद, मतभेद हो सकते हैं परन्तु आर्य समाज और दयानन्द से नहीं और डॉ० देवव्रत जी आर्य समाज के पुरोधा एवं नेता है और ये उपलब्धि आर्य समाज की है । हमारे पास डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार, डॉ० धर्मवीर (परोपकारिणी सभा अजमेर) जैसे प्रबुद्ध विद्वानों की भरमार है और ये वो लोग है जो हर क्षेत्र में हर विषय में किसी को टक्कर देने के लिए तैयार रहते हैं । मैं तो चाहता हूँ भाजपा में एक गुट आर्य समाज का हो जाए। जैसे स्वामी सुमेधानन्द जी, सत्यपाल जी, कैप्टन अभिमन्यु आदि एक बड़ा समूह आर्य समाज का भाजपा में बन सकता है और ये एक शुरुआत है । यदि आर्य समाज कोई नई राजनीतिक पार्टी शुरु करता है तो शायद सफलता पाना किञ्चित दुष्कर है । परन्तु इस प्रकार के अवसरों का लाभ उठाकर अपनी संख्या व ताकत सरकार को दिखाकर आर्य समाज का नेतृत्व भाजपा में बढ़ सकता है । मेरा तात्पर्य यही है कि शीघ्र अतिशीघ्र डॉ० देवव्रत जी के समर्थन में नगरों में बैनर, पत्रकार वार्ता, सरकार को आभार पत्र आदि अनेक माध्यमों से आर्य समाज की संख्या व ताकत का एहसास सरकार को कराए । यह आर्य समाज की शुरुआत है। आशय को ही समझे अन्यथा अर्थ न निकाले । क्योंकि अब आर्य समाज का परिवर्तन का समय आ चुका है । हम लोगों के परिश्रम से ही आर्य समाज और दयानन्द का प्रचार होगा । आओ संगठन सूक्त के आदेश का पालन करते हुए मिलकर आर्यत्व का प्रचार करें। अतः हम अपनी राजनीति में भूमिका निभायें क्योंकि यह एक अच्छा विकल्प है । अस्तु

जयतु संस्कृतं, जयतु दयानन्दः, जयतु भारतम् ।

डॉ० उदयन आर्य
प्राचार्य एवं आचार्य
(श्री गुरु विरजानन्द महाविद्यालय
गुरुकुल करतारपुर)

—०—

आर्य समाज की दार्शनिक दृष्टि

– डॉ० भवानीलाल भारतीय

सच यह है कि ऋषि दयानन्द के दार्शनिक विचारों पर बहुत कम ऊहापोह हुआ है। चिन्तकों और विचारकों ने एक धर्म-संशोधक तथा समाज-सुधारक के रूप में तो उनका नोटिस लिया, किन्तु उनके दार्शनिक विचारों पर चर्चा करने के लिये बहुत कम समय निकाल पाये। भारत के धर्म-तत्व के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के प्रत्येक धर्माचार्य, धर्मसंशोधक तथा धर्म-प्रचारक ने किसी न किसी दर्शन का आधार लेकर अपने मत का प्रचार किया। जब आद्य शंकराचार्य ने अवैदिक जैन और बौद्ध मतों के विरुद्ध अपना अभियान चलाया, यहाँ तक कि शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, कापालिक आदि विभिन्न देवी-देवताओं को आराध्य मानने वाले सम्प्रदायों का तीव्र खण्डन किया तो उनके पास एक ब्रह्मवाद (अद्वैतवाद) रूपी प्रखर दार्शनिक अस्त्र था। आगे चलकर जब भक्तिमार्ग के प्रवर्तक आचार्यों ने ज्ञान की तुलना में भक्ति को वरीयता देकर विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया तो उन्होंने भी ईश्वर, जीव, सृष्टि-रचना, मोक्ष आदि दार्शनिक विषयों को लेकर अपने-अपने विचारों के आधार पर विशेष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत आदि दार्शनिक मतों की स्थापना की।

निर्गुण सन्तों के दर्शन में यद्यपि किञ्चित अस्पष्टता तथा धुंधलापन दिखाई पड़ता है तथापि उनमें अधिकांश जीवेश्वरएक्य सिद्धान्त को मान्यता देते हैं तथा ज्ञान और भक्ति को समान महत्व देकर त्याग, तितिक्षा, वैराग्य आदि के आचरण पर जोर देते हैं। निर्गुण सन्तों में विचार सहिष्णुता तथा ग्रहणशीलता विशेष रूप से दिखाई देती है, तभी तो वे अद्वैतवाद और भक्तिवाद जैसे वैदिक-पारम्परिक तत्वों को स्वीकार करने में भी कोई संकोच नहीं करते। सूफियों का प्रेम तत्व तथा इस्लाम की एक अल्ला को लेकर कट्टरता भी सन्तों में दिखाई देती हैं। समसामयिक धर्माचार्यों में ब्रह्मसमाज के आचार्यों का दार्शनिक मत सुस्पष्ट नहीं हो सका। इतना सत्य है कि ब्रह्म मत के संस्थापक राममोहन राय का सारा जोर वैदिक और औपनिषदिक एकेश्वरवाद के सुदृढ़ प्रतिपादन पर था। उपनिषदों तथा वेदान्त दर्शन पर उनकी कलम चली, किन्तु उन्होंने शाङ्कर अद्वैत का समर्थन नहीं किया। ऋषि दयानन्द के समकालीन देवेन्द्रनाथ ठाकुर में भक्ति की प्रबलता दिखाई पड़ती है जबकि ईसाई चिन्तन से प्रभावित केशवचंद सेन वैदिक दर्शन से थोड़े हटे दिखाई पड़ते हैं। उन्हें ईसाई सन्तों ने अधिक प्रभावित किया था।

ऋषि दयानन्द के दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन आरम्भ करते समय हमें विदित होता है कि संन्यास ग्रहण करने के साथ-साथ उन्होंने अद्वैत वेदान्त प्रतिपादक वेदान्तसार तथा वेदान्त परिभाषा आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया था तथा उनका स्पष्ट झुकाव शाङ्कर मत की ओर हुआ था। स्वलिखित आत्मवृत्तान्त में वे कहते हैं — यहां चेतन मठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारी और संन्यासियों से वेदान्त विषय्र की बहुत बातें की और मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् जीव ब्रह्म एक है ऐसा निश्चय उन ब्रह्मनन्दादि

ने मुझे करा दिया । प्रथम वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ-कुछ निश्चय हो गया था परन्तु वहां (चेतन मठ में) ठीक दृढ़ हो गया कि मैं ब्रह्म हूँ ।

यह भिन्न बात है कि आगे चलकर जब उन्होंने वेदों, उपनिषदों तथा वेदान्तसूत्रादि का विशद और तलस्पर्शी अध्ययन किया तो वे अद्वैतवाद के प्रति आश्वस्त नहीं रहे । उन्हें शंकर द्वारा प्रतिपादित मायावाद में अनेक न्यूनताएँ दृष्टिगोचर हुई और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन तत्व अनादि हैं । ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वसाक्षी, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी तथा सर्वद्रष्टा है । जीव जिसे आत्मा कहा जाता है, अल्पज्ञ, अल्पशक्ति वाला, एकदेशी, चेतन तथा अणु है। वही कर्मों का कर्ता तथा भोक्ता है । अव्यक्त प्रकृति संसार का उपादान कारण है । उसमें हलचल और गति परमात्मा के सान्निध्य से आती है । मूलतः वह जड़ है तथा त्रिगुणमयी है ।

ऋषि दयानन्द ने वेदों पर आधारित त्रैतवादी दर्शन का प्रतिपादन अपने ग्रन्थों में सर्वत्र किया है । यों तो उनके ग्रन्थों में दार्शनिक चर्चा सूत्र में पिरोई, मणियों की भाँति सर्वत्र दिखाई पड़ती है, तथापि विशेष रूप से सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास से आरम्भ कर नवें समुल्लास पर्यन्त भाग में ईश्वर, जीव, सृष्टि-रचना, बन्ध, मोक्ष आदि दार्शनिक मतों की स्पष्ट तथा सतर्क मीमांसा उपलब्ध होती है । ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका तथा वेदभाष्य में भी प्रसंगोपात्त दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है जबकि अद्वैत वेदान्त की आलोचना में उन्होंने एक लघु ग्रन्थ 'वेदान्तध्वान्तनिवारण' शीर्षक पृथक्शः लिखा । सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में शांकरमत की आलोचना के प्रसंग में उन्होंने ब्रह्मसूत्रों को भूरिशः उद्धृत कर उनके शंकराचार्य द्वारा किये गये अर्थों के दोषों को दिखाया है । सैमेटिक मतों के दार्शनिक विचारों की आलोचना उनके शास्त्रार्थों तथा लेखन में यत्र-तत्र दिखाई देती है । यही उनका दार्शनिक लेखन है ।

दर्शन का वैशिष्ट्य –

यदि सूत्र रूप में कहा जाये तो दयानन्द का दर्शन वैदिक संहिताओं में व्याख्यात दार्शनिक विचारों की समष्ट है । दयानन्द ने मानवीय दर्शन का उद्गम वेदों से माना है तथा परवर्ती उपनिषदों और दर्शन ग्रन्थों में अभिव्यक्ति दार्शनिक विचारधारा का मूल स्रोत वेदों में देखा है । दयानन्द का दर्शन प्रधानतः यथार्थवादी है जबकि आदर्शवाद के मौलिक तत्व उसमें समाविष्ट हैं । इस दर्शन में सन्देहवाद के लिए कोई अवकाश नहीं है और न यह निराशावाद तथा पलायनवाद को प्रोत्साहन देता है । जीवन में आशा, उत्साह, पुरुषार्थ तथा श्रम को प्रोत्साहन देने की प्रवृत्ति दयानन्दीय दर्शन में सर्वत्र दिखाई पड़ती है । दयानन्द का दर्शन मनुष्य को पुरुषार्थ में प्रवृत्त करता है । आगे के पृष्ठों में हम दर्शन के अध्ययन के लिए स्वीकृत निम्न तीन प्रकरणों के अन्तर्गत दयानन्द के दार्शनिक विचारों का अध्ययन करेंगे – १. प्रमाणमीमांसा, २. तत्वमीमांसा तथा आचार शास्त्र ।

३/५, शंकर कॉलोनी,
श्रीगंगानगर, (राज०)-३३५००१

–०–

चाणक्य-नीति में वर्णित भगवान् राम की महिमा

–प्रो० ओमकुमार आर्य, उपप्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा

हमारे दो सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महापुरुष हैं, राम और कृष्ण, जो हमारे धर्म के सुदृढ़ स्तम्भ हैं और हमारी संस्कृति की आधारशिला । दोनों अपने-अपने गुणों के कारण इतने विख्यात हैं कि पूरा नाम भी लेने की आवश्यकता नहीं है, उनकी अपनी विशेषतायें ही उनकी पहचान है, उनका नाम है और उनका परिचय है । मर्यादा पुरूषोत्तम कहना ही पर्याप्त है, सुनने वाले तुरंत समझ जायेंगे कि भगवान् राम का उल्लेख किया जा रहा है । योगेश्वर कहने मात्र से श्रीकृष्ण का बोध हो जाता है । श्रीकृष्ण को तो इतिहास और परम्परा ने इतना सम्मान दिया है कि समस्त विश्व में इतना सम्मान आज तक किसी अन्य महापुरुष को नहीं मिला । जैसे यदि हम किसी महापुरुष के जन्मदिन अर्थात् जयन्ती का जिक्र करते हैं तो उस-उस महापुरुष का नाम साथ में लगाना आवश्यक होता है यथा — रामनवमी, सीताष्टमी, हनुमान जयंती, बुद्ध जयन्ती, महावीर जयन्ती, दयानन्द जयन्ती आदि । किन्तु श्रीकृष्ण के संदर्भ में नाम साथ में जोड़ना आवश्यक नहीं है, मात्र जन्माष्टमी कह दीजिये, पर्याप्त है । बच्चे भी समझ जायेंगे कि जन्माष्टमी अर्थात् कृष्ण जन्माष्टमी । सारा विश्व जानता है कि जन्माष्टमी अर्थात् श्रीकृष्ण का जन्म दिन । दुनिया के किसी अन्य देश को यह सौभाग्य नहीं मिला कि उसके किसी महापुरुष का जन्मदिन बिना उस महापुरुष का नाम लिये ही लोग समझ जाते हों । यह सौभाग्य तो विश्व-इतिहास ने सुरक्षित और आरक्षित रख छोड़ा है भारत के लिये और भारत के यशस्वी सपूत श्रीकृष्ण के लिये ।

तो हम चर्चा कर रहे थे मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचंद्र की, चाणक्य के राम की । राम और श्रीकृष्ण पर विश्व की अनेक भाषाओं में विपुल साहित्य मिलता है, चाहे उनकी प्रशंसा में हो, चाहे विरोधियों के द्वारा की गई आलोचना रूप में हो । श्री रामचंद्र का विशद जीवन इतिहास जहाँ वाल्मीकीय एवं तुलसीकृत रामायण (रामचरित मानस) में मिलता है वहाँ अन्यतः भी उनका वर्णन विस्तारपूर्वक अथवा संक्षेपतया उपलब्ध है । उनका व्यक्तित्व अनेक उत्कृष्ट गुणों का आगार है । वे सत्यसंध हैं, न्यायकारी हैं, विग्रहवान् धर्म हैं, एक की संख्या उनकी अपनी विशेषता है, अर्थात् जो बोलना होता है एक ही बार में बोल देते हैं, बोले हुये पर अडिग रहते हैं, प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने वचन को निभाने का अपूर्व साहस रखते हैं, इसी को लक्ष्य करके तुलसी ने कहा —

रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जायें पर वचन न जाई ।

इसी को महाकवि वाल्मीकि ने यूं कहा —

रामो दिर्नाभिभाषते

अर्थात् राम दोगली बात नहीं करते, कहीं हुई बात को पूरा करते हैं । बार-बार बात बदलना, कहीं हुई बात पर न टिकना, सफाई में यह कहना कि मेरा आशय यह नहीं था, मेरे वक्तव्य को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है, संदर्भ को ठीक से नहीं समझा गया, आदि-आदि ये सब व्यर्थ का प्रलाप तो उन्होंने वर्तमान समय के गिरगिटिये, बेपैंदी के लोटा-टाईप नेताओं के लिये छोड़ दिया था, जो जुगाड़ की आड़ में अपना गिरगिट धर्म बड़ी मुस्तैदी से निभा रहे हैं । भगवान् राम और एक दोनों लगभग पर्यायवाची हैं । एक पत्नीव्रत, किसी को दान दिया तो एक बार में ही इतना दे दिया कि फिर उस दानार्थी को माँगने की ही आवश्यकता नहीं पड़ी, एक ही बार के संधान में लक्ष्य को भेद दिया, दुबारा संधान लगाने की नौबत ही नहीं आई । इस प्रकार उनके अनेक अन्यतम चारित्रिक गुणों का उल्लेख यत्रतत्र मिलता है ।

आचार्य चाणक्य ने भी अपनी चाणक्य नीति में दो श्लोकों में भगवान् राम की महिमा का गायन किया है । उन्होंने भी उन्हीं विशेषताओं की ओर इंगित किया है जो अन्य इतिहास एवं काव्य-ग्रन्थों में मिलती है । एक श्लोक में वे कहते हैं –

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता,
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगंभीरता,
आचारेशुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञानता
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव ।–चाणक्यनीति (अध्याय-१२ श्लोक १४)

अर्थात् हे मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचंद्र ! आप में ये गुण प्रमुख रूप में विद्यमान हैं– धर्म-कार्यों में आप सदैव तत्पर रहते हैं, आपकी वाणी में माधुर्य है, दान उत्साहपूर्वक देते हैं, मित्रों के साथ कभी विश्वासघात नहीं करते, गुरूजनों के प्रति आप में विनयशीलता है, चित्त का गांभीर्य आपके पास है, आपका आचरण अत्यंत शुचि एवं स्वच्छ है, आप में गुण ग्राहकता है, आपका शास्त्र ज्ञान अगाध है, आप सौन्दर्य के धनी है और ईश्वर भक्त हैं। यदि गणना करें तो हम पायेंगे कि आचार्य ने ११ (ग्यारह) गुणों का उल्लेख किया है । और यह भी द्रष्टव्य है कि आचार्य चाणक्य ने इस श्लोक में महाराज राम को आदर्श महापुरूष के रूप में चित्रित किया है न कि ईश्वर के अवतार रूप में । उपर्युक्त सभी गुणों का एक या दो उदाहरण भी प्रति गुण दें तो बहुत अधिक विस्तार हो जायेगा । एक तो जो अन्तिम गुण बताया – शिवभक्ति अर्थात् ईश्वर भक्ति – उस पर विचार करना आवश्यक है । शिव परमपिता परमेश्वर का ही गौणिक नाम है जो शिवु कल्याणे धातु से बना है । चूंकि परमात्मा सदा सर्वदा सबका कल्याण करता है, भला करता है, कभी किसी का अहित नहीं करता, अतः वह शिव है । हमने शिव को कैलाशवासी, जटाधारी, शरीर पर भस्म रमाने वाला, त्रिशूलधारी, बैल जिसका वाहन है, ऐसा मान लिया जो कि नितांत भ्रामक एवं वेद विरुद्ध धारणा है ।

ईश्वर भक्त कहकर आचार्य ने इस पौराणिक मान्यता का स्पष्ट खण्डन कर दिया कि राम स्वयं ईश्वर थे या ईश्वर के अवतार थे । वैसे भी वाल्मीकीय रामायण में राम को कहीं भी ईश्वर का अवतार नहीं कहा गया, एक आदर्श उच्चकोटि का महापुरूष — महात्मा कहा गया है । उनको एक धर्मपरायण महापुरूष कहा गया है । धर्म से तात्पर्य धर्म के बाह्योपचारों से नहीं है, अपितु उन लक्षणों से है जो महर्षि मनु ने अपनी मनुस्मृति में बताये हैं —

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

ये दसों लक्षण महाराज राम पर पूरी तरह घटित होते हैं, अतः यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं कि 'रामो विग्रहवान्धर्मः' - राम धर्म की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे । क्या इनमें से कोई एक लक्षण भी हमारे जीवन में है । फिर कैसे हम धार्मिक अथवा राम के अनुयायी कहला सकते हैं । हमारी अधोगति के अनेकों अन्य कारण भी हो सकते हैं, लेकिन एक प्रमुख कारण यह भी हैं कि हमने राम, कृष्णादि महापुरूषों को माना, पर उनकी नहीं मानी। इस 'को' और 'की' के बीच का अंतर ही हमारे पतन का प्रमुख कारण है । हमने अपने महापुरूषों के गुणों की सूची का मात्र पठन-पाठन, श्रवण-श्रावण वाचनादि तो किया पर उनके गुणों को जीवन में ग्रहण करके तदनुसार आचरण कभी नहीं किया, उनका अनुकरण कभी नहीं किया, और इसी भूल या उपेक्षा का परिणाम था हमारा पतन, हमारी पराधीनता ।

इससे अगले श्लोक में भी आचार्य चाणक्य ने परोक्षतः इन्हीं गुणों का उल्लेख किया है किंतु किया है आलंकारिक शैली में । आचार्य चाणक्य राम की दानशीलता, दूसरों को सुख पहुंचाने की भावना, उज्जवल चरित्र, गांभीर्य आदि की उपमा तो देना चाहते हैं, पर किससे उपमित करें, उचित और उपयुक्त उपमान तो नहीं मिलते । वर्ण्य विषय तो लगभग वे ही गुण हैं जो पहले वाले श्लोक में हैं, पर वर्णन शैली अलग है । देखें आचार्य क्या कहते हैं —

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः
सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारान्निधिः ।
कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौः
नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते ! कस्योपमा दीयते ॥ चा०नी० १२/१५

अर्थात् दानशीलता के लिये कल्पतरु कैसे कहूँ वह तो काष्ठ है, धनैश्वर्य, श्री-सम्पत्ति के लिये सुमेरु कैसे कहूँ वह तो पर्वत है, चिन्तामणि भी तो पत्थर ही है, सूर्य आपकी तेजस्विता का उपमान नहीं बन सकता वह तो तपाता है, चन्द्रमा शीतलता तो देता है किंतु घटता बढ़ता है, समुद्र (गांभीर्य के लिये) खारा है । कामदेव सुन्दर तो है — पर शरीर - रहित है, राजा बलि भी दानशील तो था पर दितिपुत्र (दैत्य) था, कामधेनु कामनाओं की पूर्ति तो करती है किंतु वह तो पशु है । इनमें से कोई भी तो ऐसा नहीं जो आपका उपमान बन सके, फिर

हे राघव, किसकी उपमा दी जाये ? अर्थात् आप गुणों की दृष्टि से अप्रतिम हैं, अनुपम हैं, अतुलनीय हैं ।

यह चाणक्यनीति के अध्याय-१२ का श्लोक १५ है । इसमें आचार्य ने जहाँ वास्तविक पदार्थों का प्रयोग किया है जैसे सूर्य, चन्द्र, समुद्र आदि वहीं मिथकों का प्रयोग भी किया है, यथा कल्पतरु, सुमेरु, चिंतामणि, कामधेनु आदि । हम मिथकों को लेकर आचार्य से असहमत हो सकते हैं पर उनकी जो भावना है उससे असहमत नहीं हो सकते ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाणक्यनीति में भी मर्यादा पुरूषोत्तम राम का बड़ा ही आदर्श एवं अनुकरणीय चित्रण मिलता है । कहने को बहुत कुछ कहा गया, बहुत कुछ लिखा गया, तोते की तरह रामनाम, कृष्णनाम को दिन रात रटा गया, जपा गया, किंतु कमी यह रही कि हमने उनके गुणों में से एक भी तो गुण कभी ग्रहण नहीं किया, न उनके अनुसार कभी आचरण किया । जो हुआ सो हुआ, बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध ले, अब तो हम चेतें, अब तो आँखें खोलें । क्या हम तब जागेंगे जब सर्वनाश हो चुकेगा, हमारा अस्तित्व मिट जाने के कगार पर जा पहुंचेगा, हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारा इतिहास सब बर्बाद हो चुकेगा।

तब जागे तो क्या जागे,
का वर्षा जब कृषि सुखानी ।

खेती ही सूख गई तो बरसात का क्या करेंगे ? फिर तो हम पर यही चरितार्थ होगा कि —

अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत । यदि हम अपने धर्म, इतिहास और महापुरूषों के विषय में बताई गई महर्षि दयानन्द की बातें मान लेते तो आज ये दिन न देखने पड़ते । ईश्वर हम पर कृपा करें, हमें प्रेरणा दें, हमें सद्बुद्धि दें कि हम अपने को पहचानें, अपने पुरखों को पहचानें, अपने धर्म को सही स्वरूप में मानें तब जाकर कहीं हमारे दोष और विकार नष्ट होंगे और पुनः हम सारे संसार के सिरमौर बन सकेंगे । कवि के इन शब्दों पर ध्यान दें —

कुर्सीनामा देखो, तुम वीरों की संतान हो
राम, भरत बन जाओ भारत देश महान् हो ।
कृष्ण की गीता को, जिस दिन भी समझ जाओगे
बनकर धनुर्धर अर्जुन, रण में विजय पाओगे ।
पापों की लंका को बन राम ध्वस्त करना है ।
मस्तक भारत भू का जग में ऊँचा करना है ।

०९४१६२९४३४७
०१६८१-२२६१४७

जवाहर नगर, पटियाला चौक, जींद,
हरियाणा-१२६१०२

''विज्ञान का आदि स्त्रोत परमेश्वर है''

– हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

परमेश्वर ने प्रत्येक सृष्टि को दो तत्वों के मिलन से बनने का नियम बनाया है । प्रकृति केवल प्रकृति नहीं है, वह तीन सत्, रज और तम कणों के गुणों से युक्त है । अतः ईश्वरीय नियम के अनुसार प्रकृति के परमाणुओं के समूहों से जितनी सृष्टियाँ और जितने पदार्थ बने हैं वे सब विशेष मात्रा के हिसाब से बने हैं ।

परन्तु इन प्राकृतिक पंच तत्वों (देवों) के सन्तुलन में — वृक्षों की कटाई, पहाड़ों की खोदाई और सुरंग आदि के होने तथा वायु जलादि में प्रदूषण के फैलने से अतिवृष्टि, बज्रपात, तथा अनावृष्टि इनसे अन्नोत्पादन का क्षति होना और गौहत्या एवं नारी अपहरण, बलात्कार, भ्रूण हत्या आदि जैसे धरती माता पर माताओं के प्रति पाप होते रहने से भूकंप आदि द्वारा अनेक तबाही होती है ।

देखिये—दिनांक २५ अप्रैल २०१५ को नेपाल के भूकंप ने प्रायः सारे भारत को हिला दिया । दिन ११ बजे से जोर से भूकंपन होने लगा था, प्रायः एक मिनट तक हुआ, उसके पश्चात् दूसरे दिन भी १२ बजकर ४२ मिनट पर फिर भूकंप का झटका हुआ, जिससे नेपाल तो बरबाद हुआ ही, आस-पास के देश-प्रदेश के कुछ लोग भी मारे गये और घायल भी हो गये । भूकंप से नेपाल में प्रायः दस हजार से अधिक लोग मारे गये और हजारों लोगों का घर मकान ध्वस्त हो गया, तथा कई हजार लोग घायल हो गये । कुछ भागों को छोड़कर सारा भारत हिल गया था ।

कहा जाता है कि जैसे जापान के हिरोशिमा में परमाणु बम गिरा था, उससे ५०० गुणा अधिक शक्तिशाली जैसे भूकंप ने नेपाल आदि देशों को तबाह कर दिया था ।

तात्पर्य यह कि भले ही किसी के समझ में न आये पर यह सब दैवी शक्तियों के छेड़खानी का ही परिणाम है । उदाहरण के लिये जैसे ईश्वर मानव के प्रार्थनाओं को देखता है, वैसे ही धरती पर हो रहे पाप और अत्याचार को भी देखता है । किन्तु ईश्वर का नियम ऐसा है कि सारे संसार का सर्वनाश नहीं होने देता, क्योंकि सर्वशक्तिमान ईश्वर के नियम में रक्षा के साधन अधिक है । यदि अधिक न होता तो सारे विश्व का भूकंप आदि द्वारा सर्वनाश हो जाता । यदि रक्षा के साधन न होते तो सूर्य का किरण वायु मण्डल के स्तरों से छनकर तिरछा एवं कोमल बनकर प्राणियों के लिये जीवन उपयोगी न बनता। यदि पशु-पक्षी आदि प्राणियों में ईश्वरीय नियम ममत्व और प्रेम न देता तो कोई भी प्राणी अपने-अपने बच्चों से प्यार न करते, और तब उन सबकी वंश वृद्धि भी न होती ।

अतः एक ऐसी दिव्य सर्वव्यापक प्राण के समान सर्वत्रपूर्ण, किसी भी यंत्र से न दिखने वाला आत्मा से भी सूक्ष्म परमात्मा है। जो ध्यानियों की दृष्टि में प्राण और मन की एकाग्रता से प्रकाशमय दिखता है, उस अलौकिक प्रकाश को देखकर ध्यानी एवं साधक जन आनन्द से भर जाते हैं ।

परमाणु के गर्भ में न जाने अभी कितनी रहस्यमयी शक्ति छिपी हुई है, इनकी खोज वैज्ञानिको द्वारा अभी हो रही है ।

किन्तु दार्शनिक दृष्टि से जैसे धूम्र को देखकर अग्नि का, पढ़ते हुए विद्यार्थी को देखकर विद्या का ज्ञान होता है वैसे ही मस्तिष्क साधन से आत्मा के गुण चेतना और अल्पज्ञता का ज्ञान इसलिये होता है कि सृष्टि के आदि में एवं सारी सृष्टि से परे सर्वशक्तिमान एवं सर्वश्रेष्ठ तेजोमय अभौतिक ईश्वर में चैतन्यता, एवं सर्वज्ञता विद्यमान था और है, तभी तो उसने विज्ञान संगत प्राकृतिक नियम द्वारा पृथिवी से लेकर सूर्य चन्द्रादि की इस प्रकार रचना की ताकि पांचोतत्व जीवन उपयोगी बनकर इस भूमि को सबसे पहले प्राणी जगत से पूर्ण किया जा सके और अंत में एक ही बार एक विशेष जाति के प्राणी ऐसे उत्पन्न की जो धीरे-धीरे परिवर्तन होकर हजारों की संख्या में युवा और युवतियों के रूप में प्रकट हो गये और उनके मस्तिष्क को उसके नियम ने इस लायक बना दिया जिसके माध्यम से आत्मा अपने अल्प सामर्थ्य के अनुसार चेतना और ज्ञातृत्वगुण को प्राप्त कर सके और स्वाभाविक ज्ञान के अलावा वेद-विद्या द्वारा नैमित्तिक ज्ञान से अपने को सर्व विकसित कर सकें ।

तात्पर्य यह कि सबसे परे ईश्वर की चैतन्यता, सर्वज्ञता अदृश्य रूप में सृष्टि में विद्यमान है, यदि न होता तो मानव चेतना और ज्ञान से हीन होता, किन्तु ऐसा नहीं हुआ क्योंकि इस सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् विश्व के लिये परमेश्वर ने बुद्धिपूर्वक पंचतत्व को जीवन उपयोगी इसलिये बनाया ताकि सारे शरीरधारी प्राणी उत्पन्न हो सकें और सर्वश्रेष्ठ मानव को उत्पन्न इसलिये किया कि वह धर्म और विज्ञान द्वारा अपने और संसार का उपकार करें तथा अष्टांग योगाभ्यास द्वारा सच्चे शिव अर्थात् ओम् प्रणव परमेश्वर को समझे ।

परमेश्वर स्वयं विज्ञान स्वरूप है, उनकी प्राकृतिक रचनाओं के माध्यम से जो कुछ बनते हैं वे सब स्वाभाविक नियम से विज्ञान संगत बनते हैं ।

जैसे चन्द्र और वायु के योग से समुद्र में ज्वार भाटा एवं उनसे लहरें, चन्द्र से ही सामुद्रिक जीवों का विकास होना, हिमालय का टिके रहना, अन्न का पुष्ट होना और शीत लहरी को बिखेरना आदि । सूर्य की किरणों से ऊर्जा की प्राप्ति होना, फूलों में रंग बनना, सूर्य के ताप से समुद्र के नमकीन जल, वाष्प होकर वायु के योग से ऊपर उठकर बादल बन जाना और वही जल बादलों में फिल्टर होकर धरती पर बरसना, साथ ही वायु के बहाव से काले-काले दो विरोधी बादलों के टकराव से बिजली की चमक के साथ गरजन उत्पन्न होना, (यहाँ भी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, प्रकाश की गति तीव्र होने से वह आगे पहुंचता है और ध्वनि की गति उससे कम होने से उसके बाद पहुंचता है) और उन्हीं बादलों के जलबिन्दु जब टेम्प्रेचर गिरते, गिरते जैसे ही हिमबिन्दु ३२ फार्नहाइट 0^0: सेंटीग्रेट पर पहुंचता है, वे एकाएक बर्फ के टुकड़े बनकर बरसने लगते हैं ।

यदि परमेश्वर ने वायु में नाइट्रोजन तत्व की मात्रा प्रतिशत ७८.०३ भाग उत्पन्न न किया होता, तो कोई प्राणी शुद्ध अक्सीजन के अभाव में उत्पन्न न हो पाता । वायु के हल्का होने से भी कोई जीवित न हो पाता । (चन्द्र आदि कुछ लोक ऐसे हैं जहां वायु हल्का, ताप अधिक एवं जीवन उपयोगी तत्व नहीं बने हैं) जब तक, परमात्मा ने वायु मण्डल का परस्पर ऊपर-ऊपर सात स्तर नहीं बनाया था तब तक सूर्य का सीधा किरण धरती पर आने से कोई भी प्राणी उत्पन्न नहीं हुआ था । जब सागर के सम्बन्ध

से वायु मण्डल का ऊपर-ऊपर सात स्तर बन गया, तब सूर्य का किरण उन स्तरों से छनकर तिरछा एवं कोमल बनकर आने से उनके प्रकाश से ऊर्जा और पांच सूक्ष्म भूतों के योग तथा अनेक प्रकार के रासायनिक तत्वों के सम्बन्ध से विभिन्न प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति होने लगी ।

प्रश्न — क्या ईश्वर मनुष्य जैसा चेतन है ?

उत्तर — नहीं, क्योंकि मनुष्य अल्प सामर्थ्यवाला अल्पज्ञ, चेतनयुक्त और वह एकदेशी होने से उसकी आत्मा एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर के लिये जन्म धारण करता है अतः उसका संयोग-वियोग होता रहता है । किन्तु परमात्मा, आत्मा से भी सूक्ष्म होने से सर्वव्यापक, सर्वशक्तिसम्पन्न ऊर्जावान है, उसमें चैतन्यता और सर्वज्ञता का भी गुण विद्यमान है । (जैसे वायु में प्राण (ऑक्सीजन) विद्यमान है, वैसे ही प्राण से भी सूक्ष्म सामर्थ्यवान् परमेश्वर तत्व में चैतन्यता विद्यमान है ।)

उदाहरण के लिये — आत्मा में जो चेतन एवं ज्ञान करने का गुण है, उसे प्रकट करने के लिये परमात्मा ने मानव शरीर के ऊपरी भाग में मस्तिष्क का निर्माण इसलिये कर दिया ताकि वह चेतन द्वारा ज्ञान की उपलब्धि तथा सोच-विचार कर सके । वह अपने लिये नहीं कियां (क्योंकि वह तो स्वयं विज्ञान स्वरूप है) मानव के लिये किया । इससे सिद्ध हो जाता है कि वह मस्तिष्क से परे गुरुओं का गुरु है। ईश्वर तो परमाणु के तोड़े हुए जो इलेक्ट्रान एवं न्यूट्रान आदि कण हैं, उनसे वह इतना सूक्ष्म है जिसे न तोड़ा जा सकता है न पकड़ा जा सकता है और न उसकी कोई गति है । यदि वैज्ञानिक जन ईश्वर तत्व तक पहुंच भी गये तो उन्हें उनकी चैतन्यता, सर्वज्ञता दिखलाई नहीं देगी ।

मान लीजिये जैसे कोई महान् वैज्ञानिक खड़ा है और यदि कोई अपरिचित व्यक्ति उसे देखेगा तो क्या समझेगा ? यही न कि वह भी एक साधारण मनुष्य है । किन्तु जब उस साधारण मनुष्य को किसी वेदज्ञ ने उसका परिचय दिया कि वह एक महान् वैज्ञानिक है, उन्होंने विमान, बिजली और चन्द्रयान आदि का निर्माण किया है तब उस साधारण व्यक्ति को ज्ञात हो जाता है कि वह कोई मेरे जैसा मामूली व्यक्ति नहीं है । इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप परमेश्वर है जिसे वैज्ञानिकजन समझ नहीं पा रहे हैं कि यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म का ही विराट् रूप है, जिसे शरीर साधन से देखने वाला आत्मा और दिखाने वाला परमात्मा है ।

हम लोग विधाता को ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण इसलिये मानते हैं कि विभिन्न प्रकार के प्राणियों एवं सर्वश्रेष्ठ मानव शरीर की रचना आदि सृष्टि में, पंचतत्वों के सूक्ष्म भूतों अर्थात् पांच तन्मात्राओं (शब्द रूप, स्पर्श, रस और गन्ध) के परमाणुओं से मानव आदि के शरीर के डिजाइन में आत्मा को ज्ञान करने के लिये द्यौः से मस्तिष्क और उन तन्मात्राओं से पांच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मुख्य प्राण से पाँच (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) पांच कर्मेन्द्रियां। । इसके अलावा शरीर के अन्दर के उपकरणों, हृदय आदि, मुख्य प्राण से प्राणापान द्वारा अन्न से रस, रक्त, मज्जा आदि सप्त धातुओं से उसे पुष्ट करने की विद्या एवं तमाम प्राणियों के सांचे पहले से बनने का विज्ञान उस ईश्वरीय नियम में विद्यमान था, तभी सब प्राणी उँत्पत्तिकाल में क्रम से सांचे के अनुसार आत्मा उनके शरीरों को गर्भ से जन्म लेकर कर्मानुसार सुख-दुःखों को भोगने लगा ।

सूक्ष्म शरीर का मौलिक प्राण तो दिखता नहीं है, पर जब थोड़ी देर के लिये स्वांस-प्रस्वास बन्द कर दिया जाता है तो प्राण का अस्तित्व बोध होने लगता है । वैसे ही वैभवपूर्ण सृष्टियों को जब देखा जाता है कि कैसे किस विधि विज्ञान से पांचो तत्व एवं सूर्य चन्द्रादि बने । भूगर्भ में किन-किन परिवर्तनों तापक्रम एवं रासायनिक तत्वों से, कोयला, तेल, गैस आदि तथा लोहा, सोना, चांदी, ताँबा, जस्ता, शीशा, पारद, भ्रक आदि और हीरा आदि रत्न तथा विस्फोटक पदार्थ के उपादान क्यों बने ? हमारे विचार से वे सब इसलिये बने ताकि वैज्ञानिकजन तरक्की करके उन सबसे संसार का उपकार करें । वनस्पतियों में चंदन, हींग, नारियल, कपास, नींबू, चाय आदि तरह तरह के औषधि युक्त वृक्षों की उत्पत्ति कैसे हुई, क्यों हुई, इन समस्त रचनाओं को यदि बुद्धिपूर्वक विचार किया जाय तो ऐसा लगता है कि उन सभी में विशेष मात्रा एवं विज्ञान छिपा हुआ है ।

जैनेवा के पास स्थित सर्व वेधशाला के भूगर्भ में १११ देशों के वैज्ञानिक, दो टीम सृष्टि के सार की खोज कर रहे थे । दोनों टीमों ने एक ही निष्कर्ष पर पहुंचते हुए कहा कि उन्होंने सृष्टि के मूलतत्व को खोज लिया है, इस सृजन कारक कण से सृष्टि के कई रहस्य खुल जाने की आशा वे लोग रखते हैं । परमाणु के अन्दर जिस कण की खोज की गई है, वैज्ञानिकों का मानना है कि वही कण, परमाणुओं को ठोस एवं द्रव्यमान बनाता है, अतः वही सृजन कारक है । किन्तु जिस हिग्स बोसॅन को गॉड पार्टिकल अथवा ईश्वरीय कण कहा गया है, वह भी जड़ है, उसकी भी गति है । इसलिये वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सर्वदृष्टा सारी सृष्टि का रचयिता नहीं हो सकता । उस विशेष कण में केवल परमाणु को द्रव्यमान बनाने का ही गुण हो सकता है, मानव मस्तिष्क को नहीं । वह आत्मन भी नहीं है । आत्मा भी अमिश्रित द्रव्य हैं, उसे किसी ने द्रव्यमान नहीं बनाया है, वह अनादि, अविनाशी और असंख्य हैं, उस अति सूक्ष्म आत्मा में ज्ञान करने, कर्म करने और भोग करने के गुण विद्यमान हैं, जब उसका शरीर से सम्बन्ध होता है तो उसमें व्याप्त उसके सारे ज्ञानादिगुण प्रकट होने लगते हैं । जिस प्रकार मशीन बनाने के पूर्व उनके एक-एक पुर्जे अलग-अलग थे, उसी प्रकार सृष्टि के पूर्व उनके सत, रज, तम के परमाणु अंतरिक्ष में विद्यमान थे, तो जैसे वैज्ञानिक ने उन अलग-अलग पुर्जे को जोड़ कर इंजिन तैयार कर चालू कर दिया, वैसे ही विज्ञान स्वरूप परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से प्रकृति के परमाणु कणों के समूहों से यथायोग्य बुद्धिपूर्वक जोड़कर पंचतत्व एवं सूर्य चन्द्रादि को इस सौर जगत में उत्पन्न कर दिया । कैसे किया, कब किया और क्यों किया ? इसका सही ज्ञान किसी को नहीं है । (परन्तु इन लोकों में सबसे पहले पृथिवी को उत्पन्न किया ।)

ब्रा० में लिखा है 'इयम् (भूमिः) वा एषां लोकानां प्रथम सृज्यत ।' अर्थात् यह भूमि इन लोकों में (अन्यतम एवं) सर्वप्रथम उत्पन्न हुई । दैवी सृष्टि में भूः व्याहृति की उत्पत्ति के समय ही भूमि बनी थी, स भूरिति व्याहरत स भूमिम सृजत (तै०बा० २,२,२) अतः परमेश्वर ने इसी को प्राणी जगत से पूर्ण कर सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् बनाया ।

मु० पो० मुरारई,

मो० - ८१५८०७८०११ जिला-बीरभूम (प० बंगाल)-७३१२१९

—o—

चार पुरूषार्थों की संक्षिप्त व्याख्या

– खुशहाल चन्द्र आर्य

ईश्वर जब जीव को उसके कर्मानुसार धरती पर मनुष्य योनि में भेजता है तब उसको चार पुरूषार्थ करने का आदेश देता है, जिससे वह अच्छे धर्म करते हुए, अपने कर्तव्यों का भली-भांति पालन करते हुए तथा अपने जीवन को और दूसरों के जीवन को सुखी बनाते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सके, जिसकी प्राप्ति के लिए ईश्वर ने जीव को मनुष्य योनि में भेजा था । कारण मनुष्य योनि से ही जीव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । यही योनि मोक्ष प्राप्ति की अन्तिम योनि है । पुरूषार्थ चार हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । वैसे देखा जाये तो मोक्ष कोई पुरूषार्थ नहीं कारण यह तो धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरूषार्थों का फल है, परिणाम है । पर कहने के लिए इसे भी पुरूषार्थ ही कह देते हैं । परन्तु यह पुरूषार्थ कैसे हो सकता है कारण पुरूषार्थ में तो कर्म करना पड़ता है, परन्तु मोक्ष में तो जीव को कोई काम नहीं करना पड़ता । वह तो केवल ईश्वर के सान्निध्य में रहते हुए सब किस्म के आनन्द को प्राप्त करता रहता है जिसे परम आनन्द कहते हैं । पहले के विद्वान् मोक्ष यानि मुक्ति की कोई अवधि नहीं मानते थे । उनका कहना था कि मुक्ति का अर्थ ही होता है, हमेशा के लिए जीवन-मरण से मुक्त हो जाना यानि मुक्ति मिलने के बाद फिर कभी भी जन्म नहीं लेना होता । परन्तु महर्षि दयानन्द का मानव मात्र पर यह एक बहुत बड़ा उपकार है कि उन्होंने मुक्ति की भी एक अवधि बताई है । महर्षि का कहना है कि जिन अच्छे कर्मों से मुक्ति मिली है, जब उन अच्छे कर्मों के करने की कोई अवधि होती है तो उसके फल के रूप में मिली मुक्ति की भी अवधि होनी जरूरी है चाहे वह कितनी भी लम्बी हो । इसी आधार पर महर्षि जी ने वेदों से जानकर मुक्ति या मोक्ष की अवधि ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष की मानी है ।

पुरूषार्थ के बारे में यह बताना उचित है कि पुरूषार्थ का तात्पर्य है कि किसी काम को कर्त्तव्य व परोपकार की भावना से पूरे मनोयोग के साथ तथा पूरे साहस और उत्साह के साथ किसी अच्छे उद्देश्य के लिए करना ही पुरूषार्थ है । पुरूषार्थ बुद्धिपूर्वक व सात्विक भाव से ही होता है, इसलिए केवल मनुष्य को ही पुरूषार्थ करने की आवश्यकता है, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्षादि को नहीं । कारण ये सब केवल भोग योनियाँ हैं । इनके किये हुए कर्मो का फल हमको नहीं मिलता । ये योनियाँ केवल स्वाभाविक कर्म ही करती है यानि सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना तथा सन्तान पैदा करना आदि । इन कर्मों में पुरूषार्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं । परन्तु मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जो भोग योनि के साथ-साथ धर्म योनि भी है । इसको अपने किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों का फल ईश्वर की न्याय व्यवस्था के द्वारा अच्छे कर्मों का फल सुख के रूप में और बुरे कर्मों का फल दुःख के रूप में मिलता है । इसीलिए ईश्वर ने मनुष्य को अन्य जीवों की बनिस्पत अधिक बुद्धि दी है, जिससे वह चिन्तन मनन करके यानि अच्छे-बुरे की जांच करके अच्छे कर्म करे और बुरे काम न करे ताकि वह अच्छे काम करके मोक्ष पाने का अधिकारी बन सके । मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसमें स्वाभाविक ज्ञान कम और नैमित्तिक

ज्ञान अधिक होता है, इसलिए मनुष्य सिखाने से सीखता है । बिना सिखाए मनुष्य पशुवत् ही रह जाता है । सिखाने के उद्देश्य से ही ईश्वर ने मनुष्यों के लिए सृष्टि के आदि में वेद ज्ञान दिया जिसको सुन कर या पढ़कर वह यह जान सके कि अच्छे कर्म क्या हैं और बुरे कर्म क्या है ? यह जानने के बाद मनुष्य अच्छे काम करता हुआ तथा अपना और दूसरों के जीवन को सुखी व खुशहाल बनाते हुए अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर सके । जीव मनुष्य योनि प्राप्त करके ही वेद पढ़ सकता है और उनके अनुसार चल कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । इसके अलावा मोक्ष प्राप्त करने का कोई मार्ग नहीं । इसलिए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मनुष्य योनि पाकर और वेदानुकूल चल कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अन्त में मोक्ष को प्राप्त करे । बाकी तीन पुरूषार्थ इसी भाँति हैं :

१. धर्म का तात्पर्य है कि गुणों को धारण करना जिनके धारण करने से उसको स्वयं को सुख व लाभ होता हो साथ ही दूसरों को भी सुख व लाभ मिलता हो । जैसे ईमानदारी, सत्य बोलना, किसी को धोखा न देना, निष्पक्ष बात कहना, दया, करूणा, परोपकार आदि । इन गुणों को अपनाने से मनुष्य को स्वयं को लाभ मिलता है तथा उसका जीवन भी सुखी बनता है साथ ही दूसरों का भी हित होता है । इसके विपरीत ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, बेईमानी, झूठ बोलना, किसी को धोखा देना आदि अधर्म हैं । इनको अपनाने से मनुष्य स्वयं दुःखी होता है तथा अन्यों को भी दुःख पहुँचाता है । धर्म मनुष्य के लिए बहुत जरूरी है, इससे उसकी आत्मा पवित्र होती है और दूसरों का उसके ऊपर विश्वास जमता है । आजकल लोगों ने सही धर्म को न समझकर केवल बाहरी चिन्हों तथा आडम्बरों व पाखण्डों को धर्म मानकर धर्म का रूप विकृत कर दिया है । हमारे पौराणिक भाई तो केवल मन्दिर में दिन में दो बार जाकर किसी देवी या देवता के दर्शन मात्र को ही धर्म मान बैठे हैं । बाकी समय वह कितना भी पाप कर्म करे उसका देवता उसे माफ कर देगा और उसे पाप कर्म करने की छूट मिल जायेगी । इसी भांति हमारे मुस्लिम भाई भी मानते हैं कि दिन में पाँच बार समाज पढ़ और ईद पर तीस दिन रोजे रख लो बाकी फिर वह चाहे जितना भी पाप कर्म करे, अल्लाह उसे क्षमा कर देगा और मरने के बाद उसे जन्नत (स्वर्ग) में भेज देगा । इसी प्रकार हमारे ईसाई भाई मानते हैं कि आप एक बार ईसा पर विश्वास ले आओ फिर वह जितने भी पाप कर्म करेगा, ईसा उसको गॉड (ईश्वर) से सिफारिश करके पापों से मुक्त करवा देगा और उसे स्वर्ग में स्थान दिलवा देगा । लोगों ने धर्म को इतना सस्ता बना दिया है जिससे भोले लोग सस्ते धर्म की ओर झुक जाते हैं और अधर्म के कार्यों में लिप्त हो जाते हैं । महर्षि दयानन्द का मानव-मात्र पर यह इतना बड़ा उपकार है कि उन्होंने सच्चे धर्म के स्वरूप को वेदों से जानकर, भटके हुए लोगों के सामने रखा जिसमें ईश्वर की सच्ची उपासना, सन्ध्या, यज्ञ व अष्टांग योग है, जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन को पवित्र बनाकर ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । इसके अतिरिक्त अन्ध-विश्वासों में अपने जीवन को नष्ट करना है ।

२. पुरूषार्थ में अर्थ यानि धन का दूसरा स्थान है । वेद कहता है कि धन चाहे कितना भी कमाओ लेकिन धर्म के साथ कमाना चाहिए । धर्म से कमाया हुआ धन ही अर्थ है, नहीं तो सब अनर्थ है । धर्म से धन कमाने का तात्पर्य है कि सच्चाई, ईमानदारी व परोपकार की भावना व कर्त्तव्य भाव से धन कमाना चाहिए । आप कोई भी काम करो चाहे व्यापार हो, चाहे खेती हो, चाहे नौकरी हो या अन्य कोई सेवा कार्य

हो । सभी को धर्म व कर्त्तव्य का ध्यान रखते हुए करना चाहिए । उसमें किसी का भी अहित नहीं होना चाहिए । धर्म के साथ ही धन कमाना सच्चा पुरूषार्थ है जो मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जाता है ।

३. काम : काम का तात्पर्य विषय भोगों के साथ-साथ सभी कामनाएँ यानि इच्छाएँ भी धर्म के अनुसार होनी चाहिए । विषय-भोग समय पर केवल अच्छी सुयोग्य सन्तान राष्ट्र को देने के उद्देश्य से करना चाहिए । अच्छी व सुयोग्य सन्तान यदि आप राष्ट्र को देंगे तो राष्ट्र सदैव उन्नति व समृद्धशाली बनता जायेगा और मानवता का भी उद्धार होगा । मनुष्य को अपने शरीर की आवश्यकताएँ कम से कम रखनी चाहिए और परिश्रम अधिक से अधिक करना चाहिए तभी काम को सच्चा पुरूषार्थ कह सकेंगे ।

इस प्रकार आप यदि तीनों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम को धर्म की भावना यानि परोपकार की भावना कर्त्तव्यपरायण होकर, इच्छा और कामनाओं में बिना लिप्त हुए, न्याय भाव से जीवन में कार्य करोगे तो मोक्ष मिलना निश्चित है । वेद भी हमें इस मन्त्र द्वारा यही शिक्षा देता है ।

''तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्''

फोन-२२१८३८२५, ६४५०५०१३
(ऑ:) : २६७५८९०३
मो० : ९८३०१३५७९४

C/o गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स
१८०, महात्मा गाँधी रोड़, (२ तल्ला),
कोलकाता-७००००७

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

जिन्होंने ईश्वर प्रदत्त आन्तरिक अभौतिक आनन्द की अनुभूति नहीं की, अथवा ऐसे सुख के प्रति विश्वास नहीं है, वे व्यक्ति इस भौतिक सुख को, (दु:ख रहित-पूर्ण सुख मानकर) प्राप्त करना अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य बनायेंगे, क्योंकि वे ऐसा नहीं मानते हैं कि ईश्वर द्वारा भी सुख विशेष मिलता है और वह ऐन्द्रियिक सुख से महान्, दु:खरहित पूर्णतया स्थायी होता है । बिना ईश्वर के सान्निध्य के, बिना वेदानुशीलन, बिना ऋषि निर्दिष्ट सिद्धान्तों के परिपालन के, कोई मनुष्य चाहे चक्रवर्ती सम्राट भी क्यों न बन जाये, पूर्ण सुखी नहीं बन सकता । बाहर ने सुन्दर, आकर्षक, सम्पन्न, सुखी, शान्त, सन्तुष्ट प्रतीत होने वाले व्यक्तियों के पास निकटता से निरीक्षण करे तो ज्ञात हो जाता है कि बिना ईश्वरीय विशेष ज्ञान, बल, धैर्य, संयम, क्षमा, दया के दु:खी भयभीत आशंकित, चिन्तित, खिन्न होते ही है, चाहे सामान्य व्यक्ति ऐसा निर्णय न निकाल पाये ।

यह निश्चित है भौतिक ऐश्वर्य से तृप्त मनुष्यों को ब्रह्मनिष्ठ, जीवन मुक्त व्यक्तियों द्वारा निःश्रेयस् के साधनों का परिज्ञान प्राप्त हो जाये तो वे शीघ्रता से, सरलता से ईश्वर को जानकर जीवन सफल बना सकते हैं । हे अन्तर्यामिन् । पाश्चात्यों के अनुगामी, मृगमरीचिका के भ्रम में, दौड़ लगाने वाले हम भारतीयों-आर्यों को तो स्व-कृपा से सद्बुद्धि दो, प्रेरित करो कि वेदादि शास्त्रों में प्रतिपादित परा विद्या को भी जानें, उसको जीवन में क्रियान्वित करें, स्वयं जीवन को सफल बनाकर, उदाहरण रूप में विश्व के समक्ष उपस्थित होकर यह सिद्ध कर दें कि पूर्ण सुखी, शान्त, सन्तुष्ट निर्भीक, स्वतंत्र व्यक्ति किस प्रकार का होता है, तभी लोगों को आप पर, वेदों पर अध्यात्म विद्या पर, ऋषियों पर विश्वास होगा अन्यथा नहीं । हे प्रभो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने का हमें अवसर प्रदान करो यही आपसे प्रार्थना है, आशा है इसे आप पूरा करेंगे ।

ज्ञानेश्वरार्य —

समादरणीय श्रीयुत्

सादर नमस्ते !

ईश्वरकृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु ।

आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका के रजत जयन्ति समारोह में भाग लेने हेतु (३० जुलाई से २ अगस्त २०१५) नगर में पहुंचा । यहां की आर्य समाज का भवन विशाल तथा सुन्दर है । इस समाज में बच्चों का एक विद्यालय भी चलता है । आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यकर्ता सेवा-भावी, संस्कारी, सगठित तथा बुद्धिमान हैं, जो अपने से प्रौढ़, अनुभवी, अधिकारियों के निर्देश, आशीर्वाद तथा संरक्षण को प्राप्त करके पुरूषार्थ तथा उत्साह के साथ अमेरिका में वैदिक धर्म, संस्कृति, शिक्षा के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं । सम्मेलन के आयोजन को सफल बनाने हेतु देश-विदेश से आने वाले आर्य जनों के आवास, भोजन, वाहन, विद्वानों के प्रवचन, विषय, अनुशासन, आदि की उत्तम व्यवस्था स्थानीय युवा वर्ग ने श्रद्धा के साथ की । मुझे आशा है कि नई पीढ़ी, भविष्य में आर्य समाज रूपी आन्दोलन को तीव्रगति से विस्तृत करेगी ।

ह्युस्टन से चलकर मैं न्यू जर्सी न्यूयॉर्क की ओर आ गया हूँ । इन नगरों में भारत से आये सैकड़ों आर्य परिवार हैं, जो यथा सामर्थ्य, यथा अवसर आर्य धर्म की परम्पराओं को अपने जीवन में अपनाये हुए हैं तथा अन्यों को भी परिचय कराने का प्रयास करते हैं । यहाँ पर भी मेरे अनेक प्रवचन हुए, अनेक युवकों की वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा-निष्ठा तता उनकी भावनाओं तथा कार्यक्रमों को जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई । क्योंकि अमेरिका जैसे देश में, जहाँ जाना, जाकर व्यवस्थित होना ही बहुत परिश्रम साध्य है, वहां पर वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करना वस्तुतः स्तुत्य, श्लाध्य, अनुकरणीय तथा प्रेरक है, इनकी प्रवृत्तियों को जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई ।

मनुष्य जीवन को सुखी बनाने के लिए उत्तमोत्तम साधनों, सुविधाओं, उनके सुप्रबन्ध-व्यवस्थाओं और इन सबसे उपलब्ध होने वाले भोगों, ऐश्वर्यों की पराकाष्ठा का प्रत्यक्ष करना हो तो अमेरिका जाना चाहिए । इनकी लगन, परिश्रम, निष्ठा, सहयोग, विश्वास, संगठन, अनुशासन, कला, कौशल्य वास्तव में प्रशंसा करने योग्य है । प्रेयमार्ग को अपनाकर, अपरा विद्या को सूक्ष्मता से अधिगत करके, अधिकतम इन्द्रिय सुखों को भोगने की इच्छा को पूरा करने का प्रयोजन ही, इन पाश्चात्यों की इस भौतिक उन्नति का कारण है ।

इन पाश्चात्य देशों में रहने वाले, हमारे ही सदृश मनुष्यों की इस विस्मयकारी प्रगति का दूसरा प्रमुख कारण यह भी है कि इन्होंने अपनी ईश्वर प्रदत्त बुद्धि, शक्ति, समय, साधनों को मात्र अभ्युदय हेतु ही विनियोजित कर रखा है । इनके विचारों में, न वेद वर्णित मोक्ष की कल्पना है न ईश्वर साक्षात्कार का प्रयोजन, न समाधि के प्रतिश्रद्धा है, न वैराग्य के प्रति आस्था, न ध्यान-जप-तप का व्रत है, न स्वाध्याय-सत्संग की अनिवार्यता, न पुनर्जनम्म में विश्वास है न ब्रह्मचर्य के प्रतिनिष्ठ, न पंच महायज्ञों के प्रति रुची न ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों-कर्त्तव्यों का परिज्ञान । बस एक ही कामना मन में बनी रहती है कि कैसे अधिकाधिक, शीघ्रातिशीघ्र, उत्तमोत्तम विषय भोगों को भोगकर सुखी बना जाय ।

(शेष पृष्ठ २७ पर)

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित
तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित । मो. : ९८३०३७०४६३